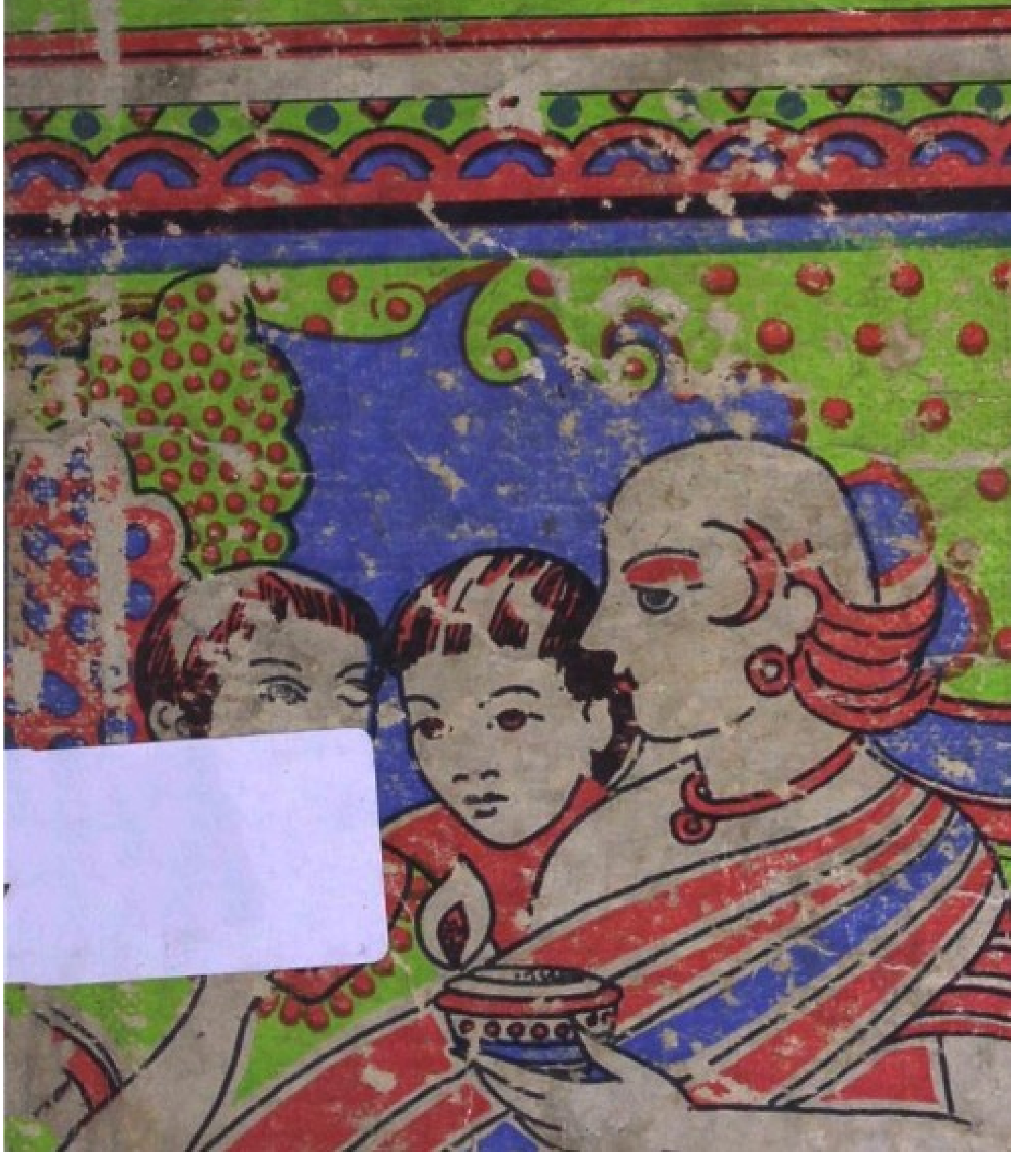
नैतिक शिक्षा की प्रेरक कथाएं



मूल्य : 8.00 रुपये

संस्करण : 1988

प्रकाशक
हरीराम द्विवेदी
पांडुलिपि प्रकाशन
ई-11/5, कृष्णनगर, दिल्ली-110051

शर्मा फाईन आर्टस, गांधीनगर, दिल्ली ३१

अनुक्रम

मंगल मन्दिर खोलो

बच्चो ! यह प्रसंग उस समय का है जब गांधी जी साबरमती आश्रम में रहते थे । उस समय आश्रम में बाबला नाम का एक बालक भी रहता था । बालक सब से छोटा था, इसलिए सब उसे बाबला कह कर ही पुकारते थे ।

पूज्य गांधी जी भी बाबला को बहुत प्यार करते थे । गांधी जी ने प्यार के कई नाम बाबला के रख रखे थे । इन्हीं नामों में से एक नाम था—'सेठिया' ।

आश्रम के सभी काम गांधी जी के नियमानुसार समय से होते थे । प्रत्येक काम को सूचना के लिए घंटी बजाई जाती थी । नित्य भोजन के लिए भी तीन घंटियां बजाई जाती थीं । जैसे ही पहली घंटी बजती, सबको रसोई में पहुंच जाना पड़ता था । इसी प्रकार दूसरी घंटी के बजते ही रसोईघर के द्वार बंद हो जाते थे तथा तीसरी घंटी के बजते ही

मन्त्रोच्चारण होता था और सब खाना खाना शुरू कर देते थे ।

एक दिन नियमानुसार भोजन के लिए पहली घंटी बजी । किन्तु बावला को अपनी मस्ती में समय का ध्यान नहीं रहा । उसने मन ही मन सोचा—'अभी चले चलेंगे !' और ऐसा सोच कर वह बड़ी धीमी चाल से रसोईघर की ओर बढ़ा । जैसे ही वह रसोईघर के पास पहुचा कि दूसरी घंटी बजी तथा रसोईघर के दरवाजे बन्द हो गए ।

बाबला मन ही मन बड़ा दुखी हुआ । मन ही मन वह दरवाजे पर खड़ा सोचने लगा कि दरवाजे के उस ओर तो सबकी थालियां सजाई जा रही होंगी, सबकी थालियों में खिचड़ी, साग, दूध और डबलरोटी रखी जा रही होगी । मेरी माता जी मेरी प्रतीक्षा कर रही होंगी । परन्तु अब क्या किया जाए ? दरवाजे तो बन्द हो चुके हैं ।

बाबला ऐसा सोच ही रहा था कि उसे एक उपाय सूझा । उसने आश्रम में बोली जाने वाली प्रार्थना टूटी-फूटी भाषा में बिना किसी लय-ताल के गाना प्रारम्भ कर दी—'मंगल मन्दिर खोलो, दयामय मंगल मन्दिर खोलो'

रसोईघर की नीरव शान्ति में बाबले का भजन सबको स्पष्ट सुनाई दिया । गांधी जी ने भी बाबले



का भजन सुना और दयामूर्ति गांधी जी का दया आ गई । वह बाबले की सूझ पर हंस पड़े । बाबले के लिए तुरन्त रसोईघर के दरवाजे खुल गए ।

बाल्यकाल में बाबला के नाम से पुकारे जाने वाले

व्यक्ति का पूरा नाम नारायण महादेव देसाई थे। नारायणं महादेव देसाई बापू के परम सहयोगी श्री महादेव भाई देसाई के सुपुत्र थे।

गुरु नानक का न्याय

महान् संत गुरु नानक एक बार घूमते-घूमते एक गांव में पहुंचे। गांव पहुंचते ही नानक देव के दर्शनार्थियों की भीड़ लग गई। जब उनके भोजन का समय हुआ तो दो भक्त उनके लिए भोजन ले आये। एक बहुत ही अमीर व्यक्ति था जो अनेक प्रकार की मिठाइयों के साथ सुस्वादु भोजन लाया था, जबकि दूसरा भक्त एक गरीब किसान था जिसने सूखी रोटी ही प्रेम से गुरुजी के सामने भोजनार्थ रखी। गुरुजी ने अमीर द्वारा परोसी थाली को छुआ तक नहीं और उस गरीब की रोटी खानी प्रारम्भ कर दी।

अमीर व्यक्ति को बहुत बुरा लगा और उसने गुरुजी से प्रश्न किया कि उन्होंने ऐसा क्यों किया?

नानक देव कुछ देर मौन रहे फिर उन्होंने बायें

हाथ में अमीर की रोटी और दायें हाथ में गरीब की रोटी लेकर थोड़ा दबाया। बायें हाथ की रोटी में से रक्त टप-टप करता हुआ गिरने लगा, जबकि दायें हाथ की रोटी में से दूध की धारा बह निकली।

गुरुजी ने उस अमीर से ही प्रश्न किया, "अब तुम्हीं बताओ, मैं तुम्हारी रोटी कैसे खाऊं जिसमें अनेक गरीबों का खून छिपा हुआ है? बेचारे गरीब खून-पसीना एक करते हैं, जिस पर तुम ऐश करते हो? तुम अमीर इसलिए बने हो कि अनेक लोगों का लहू चूसते हो।

"इस गरीब की रोटी उसके खरे पसीने की कमाई की है। यह रोटी दूध के समान पवित्र तथा बेदाग है। मैं इसे ही खाना पसंद करूंगा।"

राजेन्द्र बाबू की सादगी

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद बड़े सरल व्यक्तित्व के तथा सादगी पसन्द करने वाले व्यक्ति थे।

सन् 1935 की घटना है। डा० राजेन्द्र प्रसाद 'लीडर प्रेस' इलाहबाद में समाचार देने के लिए आए थे। सरदी के मौसम में हल्की-हल्की बूंदाबांदी हो रही थी। 'लीडर' के संपादक श्री सी० वाई० चिन्तामणि उनसे अच्छी तरह परिचित थे।

कार्यालय पहुंचकर राजेन्द्र बाबू ने एक कार्ड चपरासी को दिया। वह कार्ड लेकर सम्पादक की मेज पर रखकर बाहर चला आया।

राजेन्द्र बाबू ने चपरासी से पूछा, "साहब को कार्ड दे आए ?" चपरासी ने स्वीकृति में सिर हिलाया। राजेन्द्र बाबू ने पुनः उससे प्रश्न किया, "साहब क्या कर रहे हैं ?" "साहब अभी जरूरी काम में लगे हुए हैं। थोड़ी देर में आपको बुलाएंगे। चपरासी ने कहा।

वर्षा में राजेन्द्र बाबू के कपड़े कुछ भीग गए थे। उन्होंने देखा, कार्यालय के बाहर दो-तीन चपरासी अंगीठी पर हाथ सेंक रहे हैं। वे उन लोगों के पास जाकर अपने कपड़े सुखाने लगे।

उधर चिन्तामणि जी की नजर जब कार्ड पर पड़ी तब उन्होंने चपरासी को बुलाने के लिए घंटी बजाई। चपरासी के आते ही उन्होंने पूछा, "तुम्हें यह

कार्ड किसने दिया ?" चपरासी बोला, "वह आदमी बाहर खड़ा है !"

लीडर के सम्पादक तेजी से बाहर गए और इधर-उधर देखने लगे, लेकिन राजेन्द्र बाबू कहीं दिखाई नहीं पड़े। उन्होंने चपरासी से उनके बारे में पूछा तो उसने अंगीठी की ओर इशारा किया। सम्पादक जी दौड़ कर उनके पास गए और देरी के लिए क्षमा-याचना करने लगे।

"क्षमा-याचना किसलिए ? जब तक आप कार्य करने में व्यस्त रहे, तब तक मैंने भी अपना कार्य पूरा कर लिया।" राजेन्द्र बाबू ने हंसते हुए कहा।

ऐसी सादगी पर कौन फिदा न हो जाता !

पश्चात्ताप

डा० अंसारी मरीजों की देखभाल भी करते थे और देश-सेवा के कार्य भी। यह वह समय था जब भारतवर्ष में स्वतन्त्रता आंदोलन तेजी से चल रहा था। डा० अंसारी का एक नौकर था। वह सरकार

से मिल गया और खुफिया पुलिस का काम करने लगा। जब डा० अंसारी को इसका पता चला तो उन्होंने उसे अपनी सेवा से हटा दिया।



एक दिन नौकर की पत्नी उनके पास पहुंची और गिड़गिड़ाकर बोली, "साहब, मेरे पति बहुत बीमार हैं। दिल्ली के सब डाक्टरों ने जवाब दे दिया है।

आप ही मेरे पति के प्राण बचा सकते हैं।"

डा० साहब ने दवाइयों का बैग हाथ में ले लिया और बिना कुछ सोचे, बोले उसके साथ चल पड़े। उन्होंने कई दिन तक उसकी चिकित्सा की और अच्छा कर दिया। उनकी दयालुता से नौकर का मन पश्चात्ताप से भर उठा और उसने खुफिया विभाग की नौकरी छोड़ दी।

प्राण भी हाजिर हैं

अब्राहम लिंकन अमरीका के राष्ट्रपति थे। इतिहास में इनका नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है, क्योंकि उन्होंने दासता के विरुद्ध युद्ध लड़ा और मानवता की स्वतंत्रता के लिए प्राण बलिदान कर दिए। अब्राहम लिंकन का बचपन बड़ी गरीबी और तंगी में बीता। उनके पिता खेतों में काम करते थे और अब्राहम अपने छोटे बहन-भाई और अपनी माता के साथ घर का कामकाज करते थे। जो कुछ मिल जाता खा-पी लेते थे और भगवान का धन्यवाद करते।

एक दिन की बात है कि लिंकन के परिवार को फाके करते-करते दो दिन बीत गए। आखिर लिंकन ने डोरी और मछली का कांटा उठाया और मछलियां पकड़ने के लिए नदी पर चला गया। नदी उनके घर से काफी दूर थी। पर पैदल चलता हुआ वह नदी पर गया और कांटा लगाकर शिकार की प्रतीक्षा करने लगा। वह मन ही मन प्रार्थना कर रहा था कि बहुत सारी मछलियां मिल जाएं ताकि दो दिन से भूखा परिवार पेट भर कर खा सके, पर दुर्भाग्य से शाम तक केवल एक ही मछली मिली। लिंकन ने उसे पर्याप्त समझकर घर वापस जाने का इरादा किया। समय थोड़ा था। वह रात होने से पहले घर पहुंचना चाहता था ताकि उसके भूखे बहन-भाई सो न जाएं। उसने कांटा और डोरी समेटी और मछली उठाकर जल्दी-जल्दी घर की ओर लपका। जब आधे रास्ते पर पहुंचा तो उसने एक सिपाही देखा। उसके देश के सिपाही ने खुश होकर उसके सलाम का जवाब दिया और पूछा, "बच्चे, यह मछली कहां से लाए हो ?"

"मैं शिकार करके लाया हूं जनाब !" लिंकन ने जवाब दिया।

"मुझे मछली खाए हुए बहुत दिन हो गए हैं

क्योंकि मैं काफी समय तक युद्धक्षेत्र में रहा हूं। यदि हो सके तो मुझे दे दो।"

लिंकन सोच में पड़ गया। एक ओर उसे अपने भूखे बहन-भाई याद आ रहे थे, दूसरी ओर देश का सिपाही। आखिर उसने निश्चय कर लिया और तुरंत मछली सिपाही की ओर बढ़ा दी और कहा, "आप ही हमारे और हमारे देश के संरक्षक हैं। यह एक मछली तो क्या हमारे प्राण भी आपके लिए हाजिर हैं। यह मेरा सौभाग्य है कि मैं आपके किसी काम आ रहा हूं।"

लिंकन खाली हाथ घर आया तो मां ने पूछा, "बेटा, कोई शिकार नहीं मिला ?"

लिंकन ने मां को सारी कहानी सुना दी। मां ने कहा, "मेरे बच्चे, तुम महान हो। हम एक दिन और भूखे रह लेंगे, पर मैं प्रसन्न हूं कि तुमने देश के सिपाही की सेवा करके अपना कर्तव्य पूरा किया है और मुझे आशा है कि तुम भविष्य में भी ऐसा करोगे।"

बापू का बड़प्पन

बापू के बारे में आप सबने बहुत-सी बातें सुनी होंगी। उनकी हर बात प्रेरणादायक और सीखने योग्य है। वे दूसरों की गलती पर.कभी गुस्सा नहीं करते थे, लेकिन कोई ऐसी चीज कर देते थे जिससे दूसरा व्यक्ति शर्म से पानी-पानी हो जाता था और उसे खुद अपनी गलती का अहसास हो जाता था। ऐसी ही यह एक घटना है।

तीसरे दर्जे का डिब्बा यात्रियों से भरा हुआ था। उसी डिब्बे में गांधी जी भी यात्रा कर रहे थे। उन दिनों गांधी जी के नाम के आगे महात्मा शब्द का प्रयोग नहीं होता था। जिस डिब्बे में गांधी जी यात्रा कर रहे थे, उसी डिब्बे में एक और सज्जन भी बैठे थे जो अपने को, साथ बैठे हुए यात्रियों से अधिक श्रेष्ठ और सम्मानित समझ रहे थे।

थोड़ी देर में उन सज्जन की इच्छा थूकने की हुई

और उन्होंने खिड़की के बाहर थूकने के बजाय डिब्बे में ही थूक दिया। सभी लोग देखते रह गए। किसी की कुछ बोलने की हिम्मत नहीं हुई।

गांधी जी चुपचाप उठे और रद्दी अखबार के एक टुकड़े से थूक पोंछकर कागज बाहर फेंक दिया। उस व्यक्ति ने बड़ी हिकारत से गांधी जी की ओर देखा। इतना ही नहीं, भरे डिब्बे में अपने को अपमानित समझते हुए उन्होंने फिर से डिब्बे में थूक दिया।

गांधी जी ने इस बार भी चुपचाप अखबार के टुकड़े से थूक साफ करके कागज बाहर फेंक दिया। लेकिन वह अभिमानी व्यक्ति गांधी जी से चिढ़कर बार-बार थूकता रहा और गांधी जी बिना किसी प्रतिक्रिया के बार-बार थूक साफ करते रहे।

थोड़ी देर में वह स्टेशन आ गया जहां गांधी जी को उतरना था। स्टेशन पर अपार जनसमूह था, जो गांधी जी के स्वागत के लिए पहले से ही स्टेशन पर एकत्र था। जनसमूह गांधी जी की जय-जयकार करने लगा। इधर थूकने वाले व्यक्ति की ग्लानि और लज्जा की कोई सीमा नहीं थी, वह पश्चात्ताप की अग्नि में जला जा रहा था। अपार जन-समुदाय के बीच वह गांधी जी के चरणों में जा गिरा और फूट-

फूटकर रोने-गिड़गिड़ाने और माफी मांगने लगा ।

गेहूं की रोटी है

स्वामी दयानंद नवीन भारत के निर्माताओं में से एक थे । उनके अनुयायियों की संख्या कम न थी । वे जो कहते थे, वही करते थे । उदारता उनके चरित्र का सर्वोपरि गुण था ।

उनके भक्तों में एक मोची भी था । वह उनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखता था । स्वामी जी भी उसे बहुत चाहते थे । एक बार उस मोची ने उन्हें अपने घर आमंत्रित किया । स्वामी जी ने मोची का यह निमंत्रण सहज भाव से स्वीकार कर लिया ।

निश्चित समय पर वे उसके घर आ पहुंचे । जब वे भोजन कर रहे थे, तभी उन्हें एक अन्य भक्त ने देख लिया । स्वामी जी को मोची के घर भोजन करते हुए देखकर उसे कुछ अच्छा नहीं लगा । पास पहुंच कर उसने कहा, "छि···छिः स्वामी जी ! यह क्या, आप मोची की रोटी···!"

स्वामी जी हंस पड़े । उन्होंने प्रेमपूर्वक बात काटते हुए कहा, "भाई ध्यान से देखो । मैं मोची की रोटी नहीं, गेहूं की रोटी खा रहा हूं ।"

बात उस तथाकथित भक्त की समझ में आ गई । उसके मन में भेदभाव की जो दीवार थी, वह गिर पड़ी और प्रायश्चित स्वरूप वह भी उस मोची के यहां भोजन करने के लिए बैठ गया ।

राजाज्ञा के बाद भी आज्ञा

एक बार महर्षि चरक अपने शिष्यों के साथ औषधि के उपयोग में आने वाली वनस्पतियों की खोज में जंगलों, पर्वतों आदि में उगी प्रत्येक घास को जांचते-परखते आगे बढ़ रहे थे । सहायता के लिए कुछ शिष्य भी उनके साथ थे ।

जब वे कुछ खेतों के पास से गुजर रहे थे तब उन्हें एक पौधा दिखाई दिया जो औषधि की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता था । शिष्यगण पौधे को तोड़ने के लिए जैसे ही आगे बढ़े कि महर्षि ने तुरन्त

उन्हें रोक दिया । महर्षि बोले, "पौधे को तोड़ने से पहले खेत के मालिक की आज्ञा लेनी चाहिए ।" गुरु की बात सुनकर अन्य शिष्य तो चुप रहे; पर एक शिष्य से न रहा गया । वह बोला, "गुरुदेव ! आप



ऐसा क्यों कहते हैं, आपके पास कहीं से भी कोई पौधा तोड़ लेने की राजाज्ञा जो है !"

शिष्य को समझाते हुए महर्षि ने बड़े शांत और गम्भीर स्वर से कहा, राजाज्ञा हमारे पास अवश्य है

पर हमें खेत के मालिक की आज्ञा भी अवश्य लेनी चाहिए, अन्यथा उसका दिल दुखेगा ।"

पौधा तभी तोड़ा गया जब इस कार्य के लिए खेत के मालिक ने अपनी सहर्ष स्वीकृति दे दी ।

क्लर्क का काम

गांधी जी दक्षिण अफ्रीका से लौटे थे । कलकत्ता में कांग्रेस-अधिवेशन होने वाला था । गांधी जी को कांग्रेस-कार्यालय में अपनी सेवाएं अर्पित करने की इच्छा हुई ताकि कुछ अनुभव प्राप्त हो सके । अतः कलकत्ता पहुंचते ही वे कांग्रेस-कार्यालय गए । बाबू भूपेन्द्रनाथ बसु एवं सार्जेंट घोषाल वहां सेक्रेटरी थे । गांधी जी दोनों से मिले । घोषाल बाबू ने गांधी जी पर एक नजर डाली और मुस्कराते हुए बोले, "मैं तो तुम्हें एक क्लर्क का काम दे सकता हूं । क्या तुम तैयार हो ?"

"अवश्य," गांधी जी तुरन्त बोले ।

घोषाल बाबू ने कहा, "अच्छा तो ये चिट्ठियों

के ढेर हैं जिन्हें तुम्हें निबटाना है। एक कुर्सी लो और काम शुरू करो। यद्यपि अधिकांश पत्रों में कोई सार नहीं होता, फिर भी तुम इन्हें पढ़ो। इनकी प्राप्ति-सूचना दो। जिनका उत्तर देना आवश्यक लगे उन्हें मेरे पास ले आओ।" गांधी जी ने यह काम खुशी-खुशी किया।

बाद में जब घोषाल बाबू को गांधी जी के बारे में पता चला तब वे इस बात से दुखित हुए कि उन्होंने गांधी जी को एक क्लर्क का काम दिया, पर गांधी जी ने आदरपूर्वक उनसे कहा, "आप मुझसे बड़े हैं, मैं एक अनुभवहीन युवक हूं। आपने मुझे यह काम सौंपकर कृतार्थ ही किया है।"

यही नहीं, गांधी जो घोषाल बाबू के कपड़ों के टूटे बटन भी स्वेच्छा से टांका करते थे।

बेईसाफी

वकालत की अंतिम परीक्षा के दौरान किसी वकील के अंतर्गत कार्यानुभव प्राप्त करने के लिए बाबू

राजेन्द्र प्रसाद उन दिनों खानबहादुर सैयद शम्सुल हुदा के घर पर ही रहते थे। बकरीद का त्योहार आने वाला था। राजेन्द्र बाबू ने सोचा कि अच्छा यही रहेगा कि इन दिनों दो-चार दिन के लिए कहीं बाहर चला जाऊं, क्योंकि त्योहार का मौका है, शायद गाय की कुर्बानी दी जाए। और वह हुदा साहब को बिना बताए चुपचाप चले गए।

तीन-चार दिन बाद जब राजेन्द्र बाबू वापस आए तब हुदा साहब ने उनसे कहा, "मैं समझ गया, तुम बकरीद के कारण चले गए थे। तुमने सोचा कि यहां गाय की कुर्बानी होगी, इसलिए यहां रहना नहीं चाहिए। ऐसा करके क्या तुमने मेरे साथ बेइंसाफी नहीं की? तुमने यह कैसे समझ लिया कि मैं तुम्हारी भावना का कुछ भी ख्याल नहीं करूंगा? मेरे घर में अपने घर के हिन्दू नौकरों के ख्याल से गाय की कुर्बानी नहीं होती है।"

हुदा साहब के धार्मिक सहिष्णुतापूर्ण विचारों को सुनकर राजेन्द्रबाबू को अपने व्यवहार पर बहुत अफसोस हुआ। इसके बाद हिन्दू-मुसलमान के बारे में उनका दृष्टिकोण ही बदल गया।

अपना कार्य स्वयं

इंग्लैण्ड में एक स्थान पर एक विशाल सभा का आयोजन था। सभा के आयोजकों ने एक भारतीय विद्वान को आमंत्रित किया। सभास्थल पर कई दिनों से तैयारियां चल रही थीं। निश्चित दिन, भारतीय विद्वान भी समय पर सभास्थल पर पहुंच गए। पर यह क्या? कोई भी सभास्थल पर नहीं बैठा था। सभा में आए लोगों की भीड़ एक तरफ खड़ी थी। भारतीय विद्वान ने आयोजकों से पूछा, "यह भीड़ एक तरफ क्यों खड़ी है? सभास्थल पर क्यों नहीं बैठती?"

आयोजकों ने उत्तर दिया, "सफाई कर्मचारी अभी तक नहीं आए हैं। अतः सफाई न होने के कारण ये लोग एक तरफ खड़े हैं।"

"तो इस तरह तो कार्यक्रम समय पर शुरू नहीं हो पाएगा?"

"क्या करें? थोड़ी देर प्रतीक्षा तो करनी पड़ेगी।"

आयोजकों ने उत्तर दिया।

थोड़ी देर प्रतीक्षा के बाद भी जब सफाई कर्मचारी नहीं आए, तो भारतीय विद्वान ने ब्रुश उठाया और सभास्थल की सफाई शुरू कर दी। थोड़ी ही देर में उसने सभास्थल साफ कर डाला।

मुख्य अतिथि को सफाई करते देख आयोजक किंकर्तव्यविमूढ़ रह गए। उन्होंने कहा, "आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? यह कार्य आपको शोभा नहीं देता है।"

"किसी भी कार्य में शोभा, अशोभा नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वावलंबी होना चाहिए। यह तभी सम्भव है जब प्रत्येक व्यक्ति अपना कार्य स्वयं करे और दूसरों के भरोसे न रहे। दूसरे के भरोसे रहने वाले कभी सबल और सफल नहीं बन सकते हैं?" भारतीय विद्वान ने सिर उठा कर कहा।

उनकी बात सुनकर आयोजकों का सिर शर्म से झुक गया।

अपना कार्य स्वयं करने की प्रेरणा देने वाले और किसी भी कार्य को अच्छा या बुरा न समझने वाले ये भारतीय विद्वान और कोई नहीं, श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थे।

महावीर की अंतर्वेदना

महावीर जी एक दिन कहीं घूमने जा रहे थे। उनके साथ एक सेवक था। जब वे एक विशाल भवन के सामने से गुजरे, तो उन्हें किसी का भयंकर चीत्कार सुनाई दिया। उन्होंने अपने सेवक से उसका पता लगाने को कहा। सेवक गया और थोड़ी देर में लौट कर उसने बताया कि एक आदमी दूसरे को पीट रहा है।

"क्यों ?" महावीर जी ने पूछा।

"इसलिए कि पीटने वाला मालिक और पिटने वाला उसका दास है," सेवक बोला।

"अच्छा !" महावीर जी ने अचरज में भर कर पूछा, "क्या इस राज्य में किसी को मालिक बनने और दास बनाने का अधिकार है ?"

सेवक ने कहा, "राजकुमार, इतना ही नहीं, मालिक को दास खरीदने और बेचने का भी अधिकार है।"

महावीर जी सोचने लगे कि ऐसा समाज किस काम का, जहां एक मालिक हो, दूसरा गुलाम ! ऐसा राज्य किस काम का, जहां एक व्यक्ति दूसरे के साथ अन्याय अत्याचार कर सके !

इस घटना का उनके दिल पर गहरा असर पड़ा और समय आने पर घर-बार और राजपाट को छोड़ कर कठोर साधना के मार्ग पर चलने का वह एक प्रमुख कारण बनी।

सिद्धांतनिष्ठा

सन् 1936 की बात है। माननीय श्री लालबहादुर शास्त्री इलाहाबाद में म्युनिसिपल बोर्ड के प्रतिनिधि की हैसियत से इलाहाबाद इंप्रूवमेंट ट्रस्ट के भी ट्रस्टी बन गए। उन दिनों इंप्रूवमेंट ट्रस्ट टैगोर टाउन नामक मुहल्ले का निर्माण कर रहा था और इस योजना के अंतर्गत उसने वहां की भूमि के आधे एकड़ के अनेक प्लाट बनाए थे। ट्रस्ट बोर्ड ने उन प्लाटों को नीलामी पर बेचने का सिद्धांत तय किया।

अचानक किसी काम से श्री लालबहादुर शास्त्री कुछ दिनों के लिए इलाहाबाद से बाहर चले गए। पीछे से इंप्रूवमेंट ट्रस्ट के एक अन्य ट्रस्टी ने, जो श्री शास्त्री जी के हितैषी थे, कमिश्नर महोदय से मिलकर यह अनुमति प्राप्ति कर ली कि वे तथा शास्त्री जी इंप्रूवमेंट ट्रस्ट के ट्रस्टी होते हुए भी प्लाटों की नीलामी में बोली बोल सकते हैं। इसके बाद उस बंधु ने अपने लिए तथा शास्त्री जी के लिए एक-एक प्लाट खरीद लिया। दोनों प्लाटों के रुपए भी जमा करवा दिए। श्री लालबहादुर शास्त्री जब बाहर से लौटे तब मित्र महोदय ने बड़े उल्लास के साथ उन्हें प्लाट खरीदने की बात बताई। बात सुनकर शास्त्री जी बड़े ही मर्माहत हो गए। उन्होंने मित्र से स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि हम दोनों का प्लाट खरीदना सर्वथा अनुचित है। इतना ही नहीं, उन्होंने उन बंधु को विवश कर दिया कि उनका तथा अपना दोनों प्लाट वापस कर दें। मित्र को कष्ट हुआ, किन्तु शास्त्री जी के निश्चय के आगे उन्हें झुकना पड़ा।

अपराध और आंसू

सन् 1938 की बात है। गांधी सेवा संघ का अधिवेशन उड़ीसा प्रांत के डेलांग गांव में हुआ था। जगन्नाथपुरी का प्रसिद्ध देव मंदिर समीप ही था। कस्तूरबा गांधी और श्री महादेव भाई देसाई की धर्मपत्नी दुर्गा बहन के साथ कुछ अन्य महिलाएं भगवान जगन्नाथ के दर्शनार्थ मंदिर में गईं। उन दिनों मंदिरों में हरिजन प्रवेश नहीं कर पाते थे। इस कारण गांधी जी ने मंदिरों का बहिष्कार कर रखा था। आश्रमवासियों के लिए इस सिद्धांत का पालन आवश्यक था। सायंकाल को गांधी जी को यह बात ज्ञात हुई। आश्रमवासिनी महिलाओं द्वारा इस नियम भंग पर बापू को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने महादेव भाई से कुछ तीव्रता से कहा, "यह बात तो समझ में आती है कि कस्तूरबा बुजुर्ग हैं, अतः तुम उनको मंदिर में जाने से नहीं रोक पाए, परन्तु दुर्गा बहन को तुमने क्यों

जाने दिया ?"

बापू की इस अप्रसन्नता के कारण महादेव भाई पर मानो वज्रपात हो गया। वे बापू की वेदना के कारण मर्माहत होकर रात्रि-भर रोते रहे। सुबह होते ही उन्होंने प्रायश्चित के रूप में बापू को लिखा—"मैं आपकी चरण-सेवा के योग्य नहीं हूं। मुझे जाने की अनुमति प्रदान कीजिए।" इस पर बापू भी रोने लगे और बोले, मुझे छोड़कर तुम जा ही कैसे सकते हो ? और मैं तुम्हें छोड़कर कहां जाऊंगा ? भूल हो गई है। इन आंसुओं से ये अपराध धुल जाएंगे, चिंता मत करो।"

सामूहिक मृत्यु का आनंद

सन् 1923 की बात है। साबरमती में बाढ़ आई हुई थी। बाढ़ का पानी साबरमती आश्रम की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा था। सरदार पटेल ने अहमदाबाद से सवारियां भेजीं तथा गांधी जी को लिखा, "बापू ! आश्रम खाली करके शहर आ जाइए।"

पत्र पाकर गांधी जी ने आश्रमवासियों को प्रार्थना स्थल पर बुलाकर उनसे कहा, "भगवान के कालरूप का हम सभी दर्शन कर रहे हैं। उनकी लपलपाती जीभ शायद थोड़ी ही देर में हम सभी को समेट लेगी। आश्रम खाली करने की सूचना भी आ गई है। जो शहर जाना चाहें, जा सकते हैं। पर मैं तो आश्रम के पशु-पक्षियों और जानवरों को छोड़ कर यहां से नहीं जाऊंगा।"

यह सुनकर कोई भी आश्रमवासी आश्रम से जाने को तैयार न हुआ, अपितु सभी हर्ष-विभोर हो बाढ़ के बढ़ाव को देखने लगे। इस पर सवारी लाने वाले व्यक्तियों में से एक ने गांधी जी से पूछा, "बापू ! मौत सामने खड़ी है, पर ये आश्रमवासी तो आनन्द-मग्न हैं, ऐसा क्यों ?"

"भाई यह तो सामूहिक मृत्यु का आनन्द है !" गांधी जी ने सहजभाव से उत्तर दिया।

I want more Book

गुरु नानक का त्याग

सुहावनी धूप थी। गुरु नानक नदी के किनारे आसन लगाए विराजमान थे। सुमधुर वातावरण था। तमाम भक्तगण भाव-विभोर हो भजन में मस्त थे।

उसी समय एक सिक्ख सरदार का आगमन हुआ। वह बड़ा अमीर था। करोड़ों रुपयों का उसका व्यवसाय था। उसके हृदय में गुरु नानक के प्रति अपार श्रद्धा थी। उसने अत्यन्त भक्ति-भाव से दो कीमती रत्नजड़ित स्वर्ण कड़े गुरु नानक को भेंट किए।

गुरु नानक ने अपनी निगाह ऊपर उठाई। सरदार की ओर एक क्षण देखा। फिर मधुर मुस्कान बिखेरते हुए दोनों रत्नजड़ित कड़े स्वीकार कर लिए। दो-चार क्षण गुरु नानक ने कीमत कड़ों को उलट-पुलट कर देखा। फिर कड़ों को पास पड़े पत्थर पर रख दिया। पुनः भजन पाठ-करने लगे।

सिक्ख सरदार अपनी भेंट स्वीकार कर लिए जाने

पर निहाल हो गया। परम संतुष्ट हो गया। उसने पुनः गुरु नानक को प्रणाम किया और भक्त मंडली में जा मिला।

सभी मौन थे, कीर्तन में मग्न। लगभग दो घंटे के पश्चात एक अनहोनी घटना घटी। न मालूम कहां से उड़ती-उड़ती एक चील आई। उसने कीमती कड़ों पर झपट्टा मारा। वजनी होने के कारण उसके पंजों में एक ही कड़ा आया और वह भी छूट कर नदी की तेज धार में गिर पड़ा। सिख सरदार यह सब देख घबरा गया। उन स्वर्ण कड़ों की कीमत पचास हजार रुपये थी। उसकी आंखों के आगे अंधेरा छा गया।

सरदार ने नानक साहब की ओर ताका। गुरु जी अत्यन्त गम्भीर भाव से ग्रंथ पढ़ने में तल्लीन थे, जैसे उनको कुछ पता ही नहीं।

बस, सरदार ने अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। बिना एक क्षण भी गंवाए वह छपाक् से पानी में कूद पड़ा। कपड़े गंदे और गीले हो जाने की उसने तनिक भी परवाह न की।

सरदार पानी में कड़ा टटोलने लगा। पूरे चार घंटे गुजर गए, पर कड़ा न मिला। वह हताश हो गया।

फिर दुखी दिल सरदार नदी से निकल कर गुरु नानक के पास आया। वह गिड़गिड़ा कर बोला—"गुरुजी ! आप बता दीजिए कि वह कड़ा कहां पड़ा है ? मैं फौरन ढूंढ़ कर ला दूं।"

गुरु नानक ने अपनी निगाह उठाई। ओठों पर मधुर मुस्कान थिरक उठी। फिर अपने पास पत्थर पर रखे दूसरे कड़े को नदी की लहराती धार में फेंकते हुए कहा—"देखो, उस जगह।"

सरदार मुंह बाए गुरु नानक की ओर देखता रह गया—ठगा-सा।

अमानत

वह व्यक्ति उन दिनों भाषण के बाद दीन-हीन लोगों के लिए चंदा एकत्रित किया करता था। लोग मंत्रमुग्ध-से आ-आकर उसके हाथों में पैसे दे जाते थे। गरीब से गरीब भी, चाहे एक पैसा ही क्यों न हो, जरूर चंदा देते थे। वह राष्ट्र की संपत्ति हाथों में संभाल कर लेता जाता था। एक दिन उसकी मुट्ठी

से एक पैसा जमीन पर गिर पड़ा। एक पैसे का क्या ? यदि चाहता तो वह उसे वहीं पड़ा रहने देता। फिर भी वह लज्जा छोड़कर गिरे हुए पैसों को ढूढ़ने



लगा। उधर भीड़ धक्का-मुक्की कर रही थी। लोग पैसे देने के उतावले थे, पर वह परेशान-सा उस पैसे को ढूंढ़ने में लगा हुआ था।

उसे परेशान देखकर लोगों ने कहा, "आप एक

पैसे के लिए इतने परेशान क्यों हैं ? एक पैसे का क्या आप हमसे अनेक पैसे दान स्वरूप ले लीजिए । आप इतनी चिंता न करें । हम इसकी क्षतिपूर्ति कर देंगे ।"

पर वह व्यक्ति उसे ढूंढ़ता ही रहा और बोला, आप लोग दीन-हीनों की सेवा के लिए और पैसे दें, यह एक अलग बात है, पर दान की रकम, जनता की धरोहर को कोष में जमा कराना यह मेरा राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। खोया हुआ पैसा राष्ट्र की संपत्ति है । उस अमानत को संभाल कर रखना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है ?" उनका उत्तर सुनकर और लोगों ने भी पैसा खोजने में मदद की और पैसे को पाकर ही उन्होंने चैन की सांस ली ।

सार्वजनिक पैसे को इतना अधिक महत्व देनेवाले, उसे राष्ट्रीय संपत्ति समझने वाले व्यक्ति थे हमारे 'बापू' (महात्मा गांधी) !

कर्म का सौंदर्य

विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात शकल से कुरूप-से थे। एक दिन अकेले बैठे हुए शीशा हाथ में लिए

अपना मुंह देख रहे थे । तभी उनका एक प्रिय शिष्य कमरे में आया और सुकरात को शीशा देखता पा बड़ा आश्चर्यचकित हुआ । वह कुछ बोला नहीं, सिर्फ मुस्कराने लगा । विद्वान सुकरात ने शिष्य की मुस्कराहट देखकर सब बातें जान लीं ।

कुछ क्षण बाद वे बोले—"मैं जान गया हूं कि तुम क्यों मुस्करा रहे हो ! शायद तुम सोच रहे हो कि मुझ जैसा कुरूप व्यक्ति आखिर शीशा क्यों देख रहा है ?"

शिष्य कुछ नहीं बोला। उसकी गलती पकड़ी जा चुकी थी । उसका सिर शर्म से झुक गया । वह धरती की ओर देखता खड़ा रहा । सुकरात ने पुनः बोलना शुरू किया, "वत्स, शायद तुम नहीं जानते मैं यह शीशा क्यों देखता हूं ।"

"नहीं गुरुजी !" शिष्य ने कहा । "मैं कुरूप हूं, इसीलिए हर रोज शीशा देखता हूं ।" सुकरात कहने लगे, "शीशा देखकर मुझे अपनी कुरूपता का भान हो जाता है । मैं अपने रूप को जानता हूं इसलिए मैं हर रोज कोशिश करता हूं, कि ऐसे अच्छे काम करूं, जिससे मेरी यह कुरूपता ढक जाए ।"

शिष्य को यह बड़ा शिक्षाप्रद लगा, किंतु उसने

एक शंका प्रकट की—"तब तो गुरुजी, सुन्दर मनुष्यों को शीशा कभी नहीं देखना चाहिए।"

"ऐसी बात नहीं है," सुकरात समझाने लगे। "उन्हें भी शीशा अवश्य देखना चाहिए। इसलिए, ताकि उन्हें ध्यान रहे कि वे जितने सुन्दर हैं, उतने ही सुन्दर काम करें; वरना बुरे काम उनकी सुन्दरता को कुरूप बना देंगे।"

शिष्य को गुरु की बात का रहस्य मालूम हो गया। वह गुरु के सम्मुख नतमस्तक हो गया।

राजा से पहले इनसान हूं

जम्मू कश्मीर के महाराजा प्रतापसिंह प्रजा के दुःख-सुख तथा विचारों को जानने के लिए वेश बदल कर, घोड़े पर सवार हो ग्रामों में घूमा करते थे। एक दिन वे घूमते-घूमते एक तालाब पर पहुंचे। वहां उन्होंने एक युवक को देखा। वह बुखार से पीड़ित था। वे बहुत देर तक उसका सिर दबाते रहे, फिर उन्होंने उससे पूछा, "कहां जा रहे हो?"

"जम्मू जा रहा हूं।"

"क्या काम है वहां?"

"मैं लक्ष्मी मेहतरानी का जामाता हूं, पत्नी को लिवाने जा रहा हूं।"

"तुम मेरे घोड़े पर बैठ जाओ, मैं तुम्हें लक्ष्मी के घर पहुंचा दूंगा।"

युवक घोड़े पर बैठ गया, महाराजा लगाम पकड़ कर चल दिए।

लक्ष्मी महाराजा के महलों की ही मेहतरानी थी। महाराजा को देखते ही वह उनके चरणों पर गिर पड़ी और अपने जामाता के अपराध के लिए क्षमा मांगने लगी।

महाराजा ने उसे सांत्वना देते हुए कहा, "तुम्हारे जामाता ने कोई अपराध नहीं किया है। मैं स्वयं ही उसे घोड़े पर बिठाकर लाया हूं। मैं राजा होने के पहले एक मनुष्य हूं। मनुष्य के नाते यदि मैं तुम्हारे जामाता के दुःख-तकलीफ में काम न आता तो धर्म से च्युत हो जाता।"

बोध

स्वामी विवेकानंद को संन्यास लिए अभी कुछ ही समय हुआ था और वे विभिन्न स्थानों की पैदल यात्रा कर रहे थे। एक दिन उन्होंने एक व्यक्ति को एक कुएं पर जल पीते देखा। वे भी प्यासे थे, अतः उसके पास जाकर बोले, "भैया! जरा जल पिला दो।"

"महाराज, मैं मेहतर हूं।"

'मेहतर' शब्द सुनकर स्वामी जी उससे बिना कुछ कहे चल पड़े। कुछ दूर जाने पर उन्हें ज्ञान हुआ—"यह क्या? मैंने तो जाति, कुल, मानादि सभी का त्याग करके संन्यास ग्रहण किया है। फिर मेहतर जानकर मेरा सोता हुआ जाति-अभिमान क्यों जाग उठा? महात्मा होकर क्षुद्रात्मा का कार्य मैंने क्यों किया?"

यह विचार मन में उठते ही वे उल्टे पांव लौट

पड़े। और उस आदमी से विनीत स्वर में बोले, "भैया! मुझे क्षमा कर दो। मुझसे बड़ी गलती हुई, मैंने तुम्हारा बड़ा अपमान किया। तुमको, ब्रह्म को, ईश्वर पुत्र को मैंने अपने से क्षुद्र समझा।" यह कहते हुए उन्होंने उसे बाहु-पाश में बांध लिया।

फिर उसने स्वामी जी को बड़े प्रेम से जल पिलाया।

सच्ची पूजा

1914 की घटना है। बंगाल के विख्यात शिक्षाविद् भूदेव मुखोपाध्याय का बड़ा पुत्र कलकत्ता के एक महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। एक दिन एक प्राध्यापक ने बात ही बात में उससे कहा, "तुम्हारा घर तो कंजूस का घर है। तुम्हारे पिताजी काफी कमाते हैं फिर भी तुम्हारे यहां दुर्गा-पूजा का उत्सव नहीं मनाया जाता।"

पुत्र ने यह बात घर पर बतलाई। भूदेव बाबू ने कहा, "पुत्र, हमारे घर भी नवरात्रि में चंडीपाठ,

घट पूजा और ब्राह्मण-भोजन तो होता ही है। हां, दुर्गा मां की प्रतिमा को गाजे-बाजे के साथ लाने और गाने-बजाने पर हम फिजूल खर्ची नहीं करते।"



इस घटना के दस वर्ष बाद भूदेव मुखोपाध्याय ने संस्कृत शिक्षा के लिए निर्मित विश्वनाथ ट्रस्ट फंड को डेढ़ लाख रुपये दान में दिए। दान की रसीद दिखाते

हुए भूदेव बाबू ने अपने उसी बड़े पुत्र से कहा, "सादगी के साथ रहकर और दुर्गा पूजा जैसे त्यौहारों पर फिजूलखर्ची न करके जो संपत्ति मैंने एकत्र की थी वह मैंने संस्कृत-शिक्षा के प्रसार के लिए ट्रस्ट को दान कर दी है। धन का सदुपयोग ही दुर्गा-पूजा है। साधारण कार्यों में शक्ति व धन के अपव्यय से हमें बचना चाहिए।"

सच्ची रजत जयंती

श्री रा० नागेश्वर राव 25 वर्षों से सिनेमा-क्षेत्र में कार्य कर रहे थे उनके प्रति श्रद्धा-सम्मान-भाव रखने वाले आंध्र प्रदेश के कुछ लोग रजत जयन्ती मानकर उनका अभिनन्दन करना चाहते थे। इस उद्देश्य से उन्होंने 'रजत जयंती' समिति का गठन करके 50 हजार रुपये एकत्र किए थे।

इस बीच भयंकर तूफान ने आंध्र प्रदेश में भारी विनाश का दृश्य उपस्थित कर दिया। सहस्रों व्यक्ति

तथा पशु मारे गए, लाखों व्यक्ति आश्रय-विहीन हो गए।

तूफान की समाप्ति पर जब लोग श्री राव के पास गए तब उन्होंने विनम्र शब्दों में कहा, "बंधुओ! मैं आपकी इस श्रद्धा-भावना के लिए आपका कृतज्ञ हूं, किन्तु जब आज प्रदेश में तूफान के कारण त्राहि-त्राहि मची है, लोग दाने-दाने के लिए तरस रहे हैं, तब मैं आपकी रजत जयंती के नाम पर धन अपव्यय करने का परामर्श कैसे दे सकता हूं? मेरी सच्ची रजत जयंती तो यही होगी कि आप जितना धन इस पर व्यय करना चाहते हैं सब वह तूफान-पीड़ितों की सेवा में लगा दें।"

सबने नतमस्तक होकर श्री राव की बात स्वीकार कर ली। श्री राव अपने पास से दस हजार रुपये पहले ही 'तूफान-पीड़ित सेवा कोश' में जमा कर चुके थे।"

मानव-सेवा

कावेरी में भयंकर बाढ़ आई हुई थी। दो फुट जल और बढ़ने पर कृष्णराज सागर बांध क्षतिग्रस्त होने और धन-जन की भारी हानि होने की आशंका थी। प्रमुख इंजीनियर श्री विश्वेश्वरैया ने अपने अधीनस्थ सभी इंजीनियरों को बुलाया और विचार-विमर्श किया कि जल के वेग को बढ़ने से कैसे रोका जाए। सभी इस निर्णय पर पहुंचे कि यदि बांध के नीचे लगे दरवाजे खोल दिए जाएं तो जल का वेग कम हो जाएगा।

अब प्रश्न था, बांध के एकदम नीचे जाकर दरवाजा खोले कौन? उसमें जान का जोखिम था। सब एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। इतने में मिके-निकल इंजीनियर भालचन्द्र पंत केतकर ने श्री विश्वेश्वरैया से कहा, "मुझे आदेश दीजिए, मैं दरवाजे खोल सकता हूं।

पर ऐसा आदेश देने के लिए अपने होठों को खोलना दरवाजे खोलना जितना ही कठिन था। अतः विश्वेश्वरैया कुछ कह न सके। किंतु श्री केतकर दरवाजे खोलने के लिए दौड़ पड़े। उनके पीछे नौ-दस जवान और दौड़ पड़े।

सबने मिलकर सूझ-बूझ से दरवाजे खोले। यद्यपि काम खतरे से खाली नहीं था, फिर भी सबका जीवन सुरक्षित रहा।

मेरे लिए सब समान हैं

महामना मालवीय जी काशी हिंदू विश्वविद्यालय के एक बंगले में रहते थे। उनसे मिलने आने वालों में कुछ निर्धन व्यक्ति भी होते थे। वे प्रायः बिना आवाज दिए ही कमरे में आ जाते और मेज पर पड़ी चिट्ठियों को उठाकर पढ़ने लगते। एक दिन मालवीय जी के पुत्र ने उनसे शिकायत की, "पिताजी, सब तरह के आदमी निस्संकोच कमरे में आ जाते हैं। यह अच्छा नहीं लगता।" मालवीय जी ने उसे स्नेहपूर्वक

समझाते हुए कहा, "वे लोग जानबूझकर ऐसी धृष्टता नहीं करते। संभवतः शिष्टता के नियम न जानने के कारण बेचारों से गलतियां हो जाती हैं।" पुत्र ने



बालकोचित उमंग में आकर कहा, "पिताजी, अब मैं इस गलत ढंग को बंद करने का यथाशीघ्र प्रयत्न करता हूं।" मालवीय जी पुत्र के रोष को देखकर

मौन हो गए। तत्पश्चात दृढ़ स्वर में बोले, "तुम्हारे बालहठ से मैं प्रसन्न नहीं हूं बेटा। जब तक मैं इस बंगले में हूं, मेरा आदेश है कि ये गरीब बिना रुकावट के इस कमरे में आते-जाते रहेंगे। मेरे लिए सब समान हैं।"

असत्य रूपी विष

प्रसंग उस समय का है जब गांधी जी बैरिस्टरी की शिक्षा पाने के लिए विलायत गए हुए थे। उन दिनों वहां प्रायः विदेशी विवाहित होने पर भी स्वयं को कुंआरा बता देते थे, क्योंकि विद्यार्थी-जीवन में विवाहित होने की बात वहां प्रायः नहीं देखी जाती थी। गांधी जी विवाहित ही नहीं वरन एक बेटे के पिता भी थे; किन्तु उन्होंने अपने को कुंआरा बताया था।

वहां उनकी एक परिचित बूढ़ी स्त्री बहुधा उन्हें अपने यहां आमंत्रित करती और एक युवती से, जो उस वृद्धा के यहां ही रहती थी, उनकी बहुत बात-

चीत करवाती तथा अक्सर दोनों को अकेला भी छोड़ देती। गांधी जी के लिए यह स्थिति संकटमय थी। आखिरकार आत्म-प्रताड़ित हो उन्होंने उस वृद्धा को पत्र लिखा—

"मैं आपके प्रेम के योग्य नहीं हूं। जब मैं आपके घर आने लगा तभी से मुझे आपसे यह कह देना चाहिए था कि मैं विवाहित हूं···आपसे यह बात छिपाने का मुझे दुःख होता है, किन्तु अब ईश्वर ने मुझे सत्य कहने की हिम्मत दी है, इससे मुझे आनन्द हो रहा है। क्या आप मुझे क्षमा करेंगी? शायद आपके मन में ये इच्छा हो कि उन बहन से मेरा संबंध जुड़ जाए। आपके मन में यह इच्छा और आगे न बढ़े, इसलिए मुझे सत्य प्रकट कर देना चाहिए।"

लौटती डाक से ही उन्हें उस वृद्धा का पत्र मिला, जिसमें लिखा था, "आपका खुले दिल से लिखा पत्र मिला। हम दोनों खूब हंसीं। अगले रविवार को हम आपकी राह देखेंगी। हमारी मित्रता वैसी ही रहेगी।"

इस असत्य के दूर होने पर गांधी जी ने स्वयं को स्वस्थ पाया।

अधखिले फूलों का दुःख

बम्बई में बाल गंगाधर तिलक को छः वर्ष का कठिन कारावास हुआ। प्रतिक्रिया में इलाहाबाद में एक सभा हुई। इस सभा की अध्यक्षता पं० बालकृष्ण भट्ट ने की। इस सभा में भट्ट के सुपुत्र पं लक्ष्मीकांत भट्ट भी थे। पहला व्याख्यान श्री सुन्दरलाल जी का हुआ। इनके पश्चात पं० बालकृष्ण भट्ट बोलने को खड़े हुए। वे आक्रोश से भरे थे और अपने उद्‌गारों को बड़ी निर्भीकता से श्रोताओं के समक्ष रखने लगे, "हमें दुख तिलक का नहीं है, वे तो फिर आएंगे और फिर जाएंगे। दुख तो हमें उन अधखिले फूलों का है, जो विकसने के पहले ही तोड़ दिए गए। नदी पार करने को कूदे ही थे कि निठुर मल्लाह ने पत्थर बांधकर जल में उन्हें डुबो दिया। वे खुदीराम सरीखे बच्चे अब कहां मिलेंगे?" इस निर्भीकता से उपस्थित जनता स्तब्ध रह गई। अंग्रेजों के राज्य में इतनी

निर्भीकता मामूली बात नहीं थी।

इसका फल भी उन्हें तत्काल ही मिल गया। दूसरे दिन से ही खुफिया पुलिस चील की तरह उनके मकान के चारों ओर मंडराने लगी। सरकार ने कायस्थ पाठशाला के अधिकारियों को आदेश दिया कि वे भट्टजी को अपनी संस्था से हटा दें। पाठशाला की ओर से भट्टजी को कहा गया कि कुछ दिनों के लिए वे प्रोफेसर के पद से हटाकर केवल हेड पंडित कर दिए गए हैं, और वेतन में पांच रुपये की कमी कर दी गई है। यह व्यवस्था थोड़े दिनों के लिए है, बाद में वे फिर पुराने स्थान पर नियुक्त कर दिए जाएंगे। भट्टजी को यह बात अत्यन्त अपमानजनक लगी। वे प्रोफेसर का पद त्यागकर घर चले आए और अपने जीवन में फिर कायस्थ पाठशाला नहीं गए।

सादगी

रामकृष्ण परमहंस की मां कुछ दिन के लिए दक्षिणेश्वर रहने आ गई थीं। रामकृष्ण के आश्रयदाता श्री मथुरानाथ विश्वास ने चाहा कि वे अपनी ओर से मां को कुछ भेंट दें। उन्होंने मां से कहा, "मां आपको जिस वस्तु की कामना हो, आप निस्संकोच बता दें; मैं आपकी सेवा में उपस्थित कर दूंगा।"

मां ने बहुत सोचा, लेकिन उन्हें किसी चीज की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। वे बोलीं, "सब कुछ तो है बेटा। मेरा आशीष लो और प्रसन्न रहो।" मथुरा बाबू ने भेंट देने का बहुत आग्रह किया तब मां बोली, "ठीक है। अगर तू कुछ देना ही चाहता है तो मेरे लिए तंबाकू मंगवा दे। वह खत्म हो गई है।"

ऐसी सादगी पर मथुरा बाबू की आंखों में आंसू आ गए। सोचने लगे—ऐसी मां को रामकृष्ण-जैसा पुत्र मिले तो इसमें आश्चर्य क्या है ?



आत्मा और शरीर

महर्षि रमण अपने अंतिम दिनों कैंसर-ग्रस्त हो गए थे। कैंसर पीठ पर था और बड़ा कष्टदायी था, परंतु वे सदैव अविचलित तथा शांत ही दिखाई पड़ते थे। एक दिन किसी ने पूछा, "इतनी पीड़ा में भी



आत्मा और शरीर

महर्षि रमण अपने अंतिम दिनों कैंसर-ग्रस्त हो गए थे। कैंसर पीठ पर था और बड़ा कष्टदायी था, परंतु वे सदैव अविचलित तथा शांत ही दिखाई पड़ते थे। एक दिन किसी ने पूछा, "इतनी पीड़ा में भी

आप इतने शांत कैसे बने रहते हैं ? डाक्टर भी आपकी सहनशक्ति पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं ?"

महर्षि ने कहा, "यह सहनशक्ति की बात नहीं है। जो भी आत्मा को शरीर से अलग समझ लेता है वह शरीर के कष्टों को वैसे ही अनुभव करता है जैसे वे उससे अलग हों। शरीर और आत्मा के तादात्म्य को तोड़ देने के बाद फिर संसार के कष्ट ज्ञानी को विचलित नहीं कर पाते।"

डा० राधाकृष्णन ने महर्षि को जीवंत और सशरीर अद्वैत-दर्शन की संज्ञा दी थी। □□